संदर्भ

बदले हुए परिवेश में कक्षा प्रबंधन

शारदा कुमारी

लेखक परिचय :

जिला शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान, आर.के.पुरम, नई दिल्ली में वरिष्ठ प्रवक्ता, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 के अनुरूप विकसित हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों के एक समूह की सदस्या।

सम्पर्क :

फ्लैट नम्बर 123, प्रोद्यौगिकी, सेक्टर - 3, प्लाट नम्बर 11, द्वारका, नई दिल्ली - 75

विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में तीन बड़े अहम और गंभीर सवाल हैं, वे हैं - क्या पढ़ाना है ? किसलिए पढ़ाना है ? और कैसे पढ़ाना है ? इन सवालों के सही हल पर ही उपयोगी और ठोस कक्षा शिक्षण की रचना एवं व्यवस्था की जा सकती है। पढ़ाया कैसे जाए? यह एक निराला ही सवाल है। पढ़ाने की पद्धति का निर्णय सामान्यतयाः मनोविज्ञान के सिद्धान्तों और विषयवस्तु की प्रकृति पर निर्भर करता है। चूंकि पढ़ाने की पद्धति और कक्षा का परिवेश, ये दोनों सवाल शिक्षाशास्त्र से जुड़े हैं और इनके उत्तर बहुत सीमा तक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं। जैसे-जैसे मनोविज्ञान के सिद्धान्तों में परिवर्द्धन होता रहता है, वैसे-वैसे इन सवालों के जवाबों पर भी प्रकाश पड़ता रहता है और उनमें परिवर्तन की संभावना बनी रहती है।

आमतौर पर पढ़ाने की पद्धति से कक्षा के परिवेश (व्यवस्था) पर विशेष असर पड़ता है। भाषा के सवाल हों या गणित अथवा कोई अन्य विष्या, हर विषय को पढ़ाने के लिए एक समान शिक्षण युक्तियों का उपयोग नहीं किया जा सकता। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बहुधा विषय-विशेष के लिए ही मसलन भाषा की सामग्री परोसने के लिए ही हमें कई प्रकार की पद्धतियों पर निर्भर रहना पड़ता है। हो सकता है किसी पाठ के सवालों का जवाब पाने के लिए विद्यार्थियों को समूह में कक्षा से बाहर भेजना पड़े और विद्यालय परिसर में उगी वनस्पति का अवलोकन करना पड़े। यह भी संभव है कि उनसे तरह-तरह की भाव-भंगिमाएं अभिनय द्वारा प्रदर्शित करवाई जाए। कई प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए वे आपस में चर्चा भी कर सकते हैं, शायद उन्हें तरह-तरह की आवाजें निकालनी पड़ें, शिक्षकों तथा विद्यालय परिसर में उपस्थित अन्य व्यक्तियों से बातचीत करके हल निकालना पड़े। इसमें कोई दो राय नहीं कि इन सबका कक्षा व्यवस्था पर सीधा-सीधा असर पड़ेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी विद्यार्थी एक समय पर एक साथ कतारों में बैठे हुए श्यामपट्ट की ओर शून्य भाव से देखने को नहीं मिलेंगे। आमतौर पर हम इसी प्रकार की कक्षा व्यवस्था/परिवेश को सर्वोत्तम व अनुशासित कक्षा व्यवस्था मानने की भूल कर बैठते हैं। इस संबंध में मैं आपको एक अति गंभीर कड़वाहट से भरी सच्चाई से अवगत करवाना चाहती हूं। कक्षा में पढ़ाया कैसे जाएं और अभ्यास प्रश्न कैसे हल करवाए जाएं, इन बातों का निर्णय निर्भर कर रहा है विद्यालय निरीक्षकों एवं शिक्षा क्षेत्र के अन्य अधिकारियों की विद्यालय व कक्षा अनुशासन पर बनी समझ पर, न की विषय की प्रकृति पर।

बात स्पष्ट करने के लिए मैं आपको ले चलती हूं उस शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम में जहां भाषा (हिंदी) की चर्चा हो रही थी। संदर्भ व्यक्ति किसी अभ्यास प्रश्न का हल पाने के लिए विद्यार्थियों के सम्मिलित प्रयास से जुड़ी संभावित युक्ति का उल्लेख कर रहे थे। तत्काल एक अध्यापिका उठी और घबराकर बोली, ''महोदय, ऐसा तो कदापि न सुझाएं। इससे कक्षा व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी।'' अन्य प्रतिभागियों ने भी उक्त टिप्पणी का समर्थन किया और स्पष्ट शब्दों में कहा कि, ''ऐसे तो अनुशासन ही भंग हो जाएगा।'' स्थिति एकदम चौंकाने वाली थी। संदर्भ व्यक्ति ने प्रतिभागियों को उनके अनुशासन पर बनी समझ की परिधि के भीतर ही विकल्प सुझाने की बात कही तब सभी एकमत से बोले - ''विकल्प तो कोई हो ही नहीं

सकता क्योंकि उस युक्ति से अधिक रुचिकर और क्या होगा कि बच्चे स्वयं शामिल हैं और अपने प्रयास से मौलिक उत्तर खोज पा रहे हैं।''

परिचर्चा से ज्ञात हुआ कि सभी प्रतिभागी अभ्यास प्रश्नों व उनको हल करवाए जाने के संभावित तरीकों से बहुत प्रभावित हैं। पर कक्षा में उनको करवाने की संभावना से न केवल चिंतित हैं अपितु आतंकित और भयभीत भी हैं। उनका भय और चिंता उनके द्वारा करवाई जाने वाली अतिरिक्त मेहनत को लेकर नहीं था बल्कि अपने विद्यालय निरीक्षकों के दृष्टिकोण को लेकर था।

उनको लेकर अधिकांश विद्यालय निरीक्षक आज भी कक्षा में ऐसे माहौल की अपेक्षा करते हैं जिसमें बच्चे दिखाई जरूर दें पर उनकी आवाज न सुनाई दे। उनकी दृष्टि में वे ही शिक्षक सबसे अच्छे हैं जिनकी कक्षा में बच्चों की उपस्थिति के उपरान्त भी इतनी शांति हो कि सुई गिरने की आवाज भी सुनाई दे। विषय चाहे कोई भी पढ़ाया जा रहा हो, सभी बच्चे कतारों में व्यवस्थित रूप से बैठे हों (मानो दुकान की शेल्फ में डिब्बे सजे हुए हों) बच्चों को आपस में बातचीत करने, परामर्श करने की स्वतंत्रता न हो। सत्र के बीच बच्चों को कक्षा से बहार तो कदापि न जाने दिया जाए क्योंकि उनके बाहर आने-जाने से विद्यालय का अनुशासन भंग होता है।

मेरे विचार से चरित्र निर्माण तथा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के लिए इससे बुरी कोई परिस्थिति नहीं हो सकती। एक प्रतिभागी ने अपने साथ हुई घटना का उल्लेख किया। वह कक्षा में विद्यार्थियों के आपस में दो-दो के जोड़े बनवा कर चर्चा करवा रही थीं। सभी को लगभग अलग-अलग विषय दिए हुए थे। उदाहरण के तौर पर एक समूह को खिलखिलाकर हंसने, मुस्कुराने व ठहाके मारने में भेद बताना था। एक समूह को निहारने, टुकुर-टुकुर कर देखने एवं घूरने में भेद बताना था। जाहिर है ''विद्यार्थी चर्चा के साथ साथ अभिनय भी कर रहे होंगे। संयोग की बात, संबंधित विद्यालय निरीक्षक किसी कार्यवश विद्यालय आ पहुंचे और कोलाहल (?) सुन इसी कक्षा में आ पहुंचे। उनके द्वारा कक्षा के इस सजीव बालमित्र माहौल को घोर अनुशासनहीनता की संज्ञा दी गई। साथ ही अध्यापिका के लिए भी नकारात्मक टिप्पणी दर्ज की गई। 'कक्षा में क्या चल रहा है' यह जानने की चेष्टा ही नहीं की गई। अध्यापिका के बारे में लिखा गया - ''विद्यार्थी व्यवस्थित तरीके से बैठे न थे । आपस में हल्ला-गुल्ला कर रहे थे। किसी के पास भी पाठ्य पुस्तिका न थी और न ही कोई लेखन कार्य करवाया गया था।'' प्रशिक्षण कार्यक्रम के कुछ और प्रतिभागियों द्वारा भी लगभग कुछ इसी प्रकार के अन्य उदाहरण प्रस्तुत किए गए जो स्पष्ट रूप से इस बात की ओर संकेत कर रहे थे कि बहुत से प्रशासक, विद्यालय निरीक्षक 'अनुशासन' की सही अवधारणा से परिचित नहीं हैं।

विद्यालय तथा कक्षाओं में अनुशासन किस प्रकार का हो, कक्षाओं का माहौल व व्यवस्था किस प्रकार की हो, यदि इन सवालों के सही उत्तर हमारे विद्यालय निरीक्षकों के पास नहीं है तो जिस पकृति के अभ्यास प्रश्नों की चर्चा हो रही थी, उनकी शिक्षा द्वारा कक्षा में करवाये जाने की संभाव्यता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है।

विद्यालय निरीक्षक हों अथवा बालकों के शिक्षण से संबंधित अन्य व्यक्ति, उनके लिए यह समझना अनिवार्य है कि कक्षा का परिवेश विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच संबंधों की नई कड़ियां जोड़ता है। यह तभी संभव है जब विद्यार्थियों को अपनी बात अपने तरीके से कहने के अवसर दिए जाएंगे, न कि उन्हें अपनी विद्वता के प्रकाश से चमत्कृत करने के लिए उन्हें मौनावस्था में बैठा दिया जाएगा। शिक्षा का उद्देश्य है मानवीय विकास। विकास की आधारशिला है अनुभव। अनुभव स्वतंत्र क्रिया में निहित है और स्वतंत्र क्रिया बाहरी अविरोध में, भीतर के यथेच्छ अनवरत आविष्कार में निहित है।

क्या यह सब संभव हो पाएगा उस अनुशासनशील (?) कक्षा परिवेश में जहां विद्यार्थियों को आपस में विचार आदान-प्रदान करने की स्वतंत्रता न हो, गगन के उनमुक्त रूप से उड़ते-चहचहाते पक्षियों का कलरव सुनने के अवसर न दिए जाते हों, आस-पास उगी वनस्पति के रहस्मय संसार को जानने का कौतुक दबाया जाता हो, कक्षा में पाठ को पढ़ाते समझाते विशालकाय पहाड़ों, लंबे-चौड़े रेगिस्तानों और बहती नदियों की कल्पना न करने दी जाती हो और जहां स्वतंत्र विचारों की अपनी एक नई दुनिया रचने की क्षमता को कुचल दिया जाता हो। ऐसे अनुशासनमय कक्षा व विद्यालयी परिवेश से क्या लाभ जहां बुद्धि का विकास रुकता हो। इस प्रकार की कक्षा व्यवस्था यदि स्मरणशक्ति पर भारी बोझ डालकर थोड़े ही समय में ज्ञान की सारी विरासत सौंप देने की सामर्थ्य रखती भी हो तो उससे क्या लाभ?

विद्यालयी शिक्षा से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वीकार्य होना चाहिए कि विद्यार्थी मात्र उतना ही नहीं सीखते और सीखने का उतना ही प्रयत्न नहीं करते जितना कि उन्हें सिखाया जाता है। अपितु वे तो उससे कहीं अधिक सीखना चाहते हैं और सीख भी लेते हैं। वे अपने गुरु तो बन ही जाते हैं, दूसरों को भी राह दिखाने लगते हैं बशर्ते उनका कक्षा परिवेश स्वतंत्र रूप से कार्य करने, सोचने समझने को अवज्ञाकारिता और अनुशासनहीनता की श्रेणी में न रखे। हम सबको यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि विनयशीलता, आज्ञाकारिता और नियमबद्धता जैसे गुण दमनकारी आदेशों के पालन करवाने से विकसित नहीं होते। ''मुंह पर उंगली रखो, सीधी कतार में बिना आवाज किए चलो, रास्ते में किसी चीज को मत छुओ, आपस में मत बोलो, बिना कुछ पूछे श्यामपट्ट पर लिखा कॉपी में उतारो, जो शिक्षक कहे सिर्फ उसे ही सुनो।'' हो सकता है इस प्रकार की कवायदों से उनका ज्ञान बढ़ता हो पर यह तय है कि उनके ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता कभी नहीं विकसित होती है। हमें कक्षा का परिवेश कुछ इस प्रकार बनाना है जिससे विद्यार्थियों में 'अनुकरण' के बजाय स्वयं सीखने की प्रवृत्ति विकसित हो। शिक्षण में यदि अभिनव प्रवाह देखना हो तो कक्षा परिवेश को बच्चों की स्वभाविक क्रियाओं के अनुकूल बनाना होगा। ऐसे परिवेश में बच्चों की एकाग्रता, क्रियाशक्ति, बौद्धिक शक्ति और कल्पना शक्ति

उभर कर आती है। कतिपय नियमों का जबरदस्ती पालन करवा कर स्थापित की गई कक्षा व्यवस्था में बच्चों की स्वभाविक क्रियाओं का अंत तो हो ही जाता है, उन्हें अनुशासनशील बनाने के प्रयास में अनुशासन हीन बना दिया जाता है।

अध्ययनों से पता चला है कि सत्तावादी कक्षा परिवेश में पढ़ने वाले बच्चे बाहर से तो सत्तावादियों (शिक्षक, विद्यालय प्रमुख) के प्रति बहुत विनम्र होते हैं परन्तु भीतर से उनमें विद्वेष और विद्रोह भरा होता है जो उनकी सृजनात्मक सोच को कुतर-कुतर कर समाप्त कर डालता है। भला किसी के प्राकृतिक संवेगों को 'अनुशासन और व्यवस्था' के नाम पर दबा कर उसकी सृजनात्मक प्रवृत्तियों का विकास करना संभव होगा ?

लेख के आरंभ में जिन अभ्यास प्रश्नों की बात हो रही थी, उन प्रश्नों के उतने ही मौलिक उत्तर प्राप्त होने की संभावना है जितने की कक्षा में बच्चे, परन्तु जो अविनोदी शिक्षा धिकारी स्वतंत्र रूप से कार्य करने को अवज्ञाकारिता मानें, अपने गर्जन में बच्चों की वाणी को मुखरित न होने दें, वहां मौलिकता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। हम सभी को यह समझना अनिवार्य है कि कक्षा परिवेश शिक्षण के प्रवाह को तेज भी कर सकता है और मंद भी।

वास्तविक शिक्षा तो वस्तुओं और घटनाओं के प्रत्यक्ष अनुभव, प्रेक्षण, जिज्ञासा, तर्क-वितर्क से ही प्राप्त की जा सकती है। अपने आस-पास के परिवेश की शिक्षा तो अपनी खोजों द्वारा ही दी जानी चाहिए, उसमें बच्चों के पदचाप का आपस में चर्चा करने का मधुर कोलाहल अवश्य उत्पन्न होगा पर वह अनुशासन के नाम पर उत्पन्न हुए उनके मौन रुदन से भयंकर न होगा।

अनुशासन का अर्थ है समाज के स्वीकरणीय स्तरों के अनुसार व्यवहार करना। क्या रेत के घरौंदे बनाते बच्चे, पतंगों के पीछे दौड़ते बच्चे, विद्यालय परिसर में वनस्पति का अलवोकन करते और अवलोकन के पश्चात अपनी-अपनी समझ से टिप्पणी देते बच्चे, जमीन पर रेंगते कीडे-मकोड़ों केचुओं को देखते बच्चे क्या यह सब समाज को स्वीकार्य नहीं ? मैं याद दिलाना चाहूंगी वह प्रसंग जब गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर एक प्राथमिक पाठशाला पहुंचे। वहां उन्हें बच्चों से करवाई गई तमाम निरर्थक कवायदों जैसे : स्वागत गीत, पुष्प अर्पित करना आदि से जितना दुःख हुआ उससे कहीं अधिक दुख हआ विद्यालय परिसर में लगे वृक्ष पर पके फल देखकर। बच्चों के रहते वृक्षों पर फल टिक जाएं, यह उनकी समझ से बाहर था। बच्चों की स्वभाविक प्रवृत्ति को देखते हुए अब तक पके फलों को टूट जाना चाहिए था, अवश्य ही विद्यालय अनुशासन की ओर से बच्चों की इस सहज प्रवृत्ति पर कोई अंकुश लगाया गया होगा। हमारे आज के शिक्षा अधिकारी टैगोर जो बच्चों को आजादी से सोचने की विरासत सौंप देना चाहते थे, की समझ पर क्या टिप्पणी देना चाहेंगे। उन्हें यह समझना चाहिए कि लोकतंत्रीय वातावरण में जहां बच्चों को बहुत से काम करने की छूट दे दी जाती है, जहां वे ज्ञान की स्वयं खोज करते हैं, वहां बच्चों का व्यवहार स्वनियंत्रित होता है। स्वतंत्र परिस्थिति में अपने अंतर की स्फूर्ति के साथ बच्चे बुद्धिपूर्वक जो कुछ भी करते हैं, वही वास्तविक शिक्षा है। यह कदापि न समझें कि यह स्वतंत्रता अवज्ञाकारिता को जन्म देगी।

मेरे मानस में एक और प्रश्न कौंधता है, वह यह कि हम आखिर आज्ञाकारिता व विनयशीलता पर इतना बल क्यों देना चाहते हैं ? हम बच्चों की शक्ति और उसके सम्मान में विश्वास क्यों नहीं करते ? हर प्रकार के सामाजिक मूल्यों की अपेक्षा बच्चों से ही क्यों करते हैं ? स्वतंत्रता से स्वच्छन्दता को क्यों जोड़ते हैं ? मेरे विचार से उनके नियमों/बंधनों से भरी दिनचर्या वाली कक्षा व्यवस्था से बच्चों में समस्या निवारण, आत्म चेतना, सृजनात्मक व आलोचनात्मक सोच जैसे कौशल विकसित नहीं होंगे।

शिक्षक का काम है - बच्चों को सीखने के अवसर प्रदान करना। वे ऐसे वातावरण का सृजन करें जिसमें बच्चे अपनी पराधीन स्थिति में से स्वाधीन और स्वाबलंबी स्थिति में पहुंच सकें। विद्यालय निरीक्षकों को यहां शिक्षकों का साथ देना चाहिए क्योंकि कक्षाओं में यदि कड़े और ठहराव वाले कानूनों/नियमों का पालन किया जा रहा है तो यह सब उन्हीं के भय से। शिक्षकों के भीतर पनपती असुरक्षा की भावना, जो निरीक्षकों के दृष्टिकोण के कारण है, गलत कक्षा परिवेश की परिपाटी को समाप्त नहीं कर पा रही।

विद्यालयी कक्षाओं की अनुाशासन व्यवस्था और मर्यादा को प्रौढ़ों की धार्मिक सभा के अनुशासन व कायदों से एकदम भिन्न समझना चाहिए। जिस परिवेश में बच्चे स्वभाविक रूप से सीखते नजर आते हैं वही शिक्षा के काम को सफल करते हैं और कक्षा का परिवेश बन सकते हैं। सीधी-सपाट कतारों में बच्चों को बैठाकर, सामने पुस्तकें खुलवाकर नीरस जानकारी ठूंस-ठूंस कर दिमाग में भरने फिर उसे उगलवाने की दुखद प्रक्रिया का अब अंत होना चाहिए। हमें समझ लेना जरूरी है कि सुनने से नहीं बल्कि करने सृजन की शक्ति विकसित होती है। और सृजनात्मकता ही स्वनियमन, स्वनियन्त्रण जैसे गुणों का विकास करती है।

शिक्षा अधिकारियों से अपेक्षा है कि वे शिक्षकों को कक्षा व्यवस्था व प्रबंध विषय सामग्री के अनुरूप करने देने की छूट प्रदान करे। कक्षा का परिवेश कक्षा भवन तक सीमित न रहकर आस-पास की समूची सृष्टि को अपने में समा लें, ऐसा करने की छूट शिक्षकों को हो। बच्चों के पास विभिन्न प्रकार की अपनी स्वयं की अनुभव पूंजी होती है, उसी के सहारे कक्षा शिक्षण को जीवंत बनाने का मौका प्रदान करें। एक और महत्त्वपूर्ण बात, बहुत से पाठ, चाहे भाषा के हों अथवा अन्य विषयों के, एक निश्चित समय सीमा में बंधकर नहीं खोले जा सकते, अतः कक्षा व्यवस्था को समय विभाग चक्र की बेड़ी से भी मुक्त करें।

अन्त में, विद्यालय में बच्चों को ऐसा वातावरण मिले जो उनके व्यक्तित्व को विकसित होने, उनमें उत्तरदायित्व के विकास एवं वैज्ञानिक तथा तार्किक चेतना के विकास में मददगार हो।

साथ ही कक्षा परिवेश ऐसा हो जिसमें उनकी कल्पनाओं, इच्छाओं को स्थान मिले। ◆